International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2016; Page No. 28-30

नागार्जुन के काव्य में धार्मिक भयादोहन की तीव्रभर्त्सना

डॉ0 दीपा त्यागी

हिन्दी विभागाध्यक्षा, इस्माईल नेशनल महिला कॉलिज, मेरठ, उ0प्र0, भारत।

सारांश

प्रगतिवादी कवि नागार्जुन का युग धार्मिक –विश्वासों के खण्डन का युग था। प्राचीन जर्जर रूढियों, अंध–विश्वासों एवं पुरातन मान्यताओं का सर्वत्र विरोध हुआ। धर्म के क्षेत्र में व्याप्त असमानता, साम्प्रदायिकता एवं धोखाधड़ी देखकर नागार्जुन विक्षुब्ध हो उठे तथा उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से धार्मिक भयादोहन की तीव्र भर्त्सना की । जाति से ब्राहाण होने पर भी धर्म की आड़ में ठगने वाले ब्राहमणों के प्रति रोष व्यक्त किया। कवि की दृष्टि में भगवान कल्पना पुत्र है यदि भगवान सच्ची पुकार सुनने वाला है तो दीन–हीन जनों का आर्तनाद उस तक क्यों नही पहुँचता ? धर्म के प्रतीक मंदिर, मस्जिद, मठ, तीर्थ आदि सभी स्थानों पर दुराचार है। धर्म के ठेकेदार पण्डित, पुरोहित, पीर, बाबा आदि धर्म के नाम पर अनेक प्रकार की भ्रष्टताओं को जन्म देते हैं। नागार्जुन जब तक जीवित रहे एक नये कश्मीर की कल्पना करते रहे। उनका कहना था–''मात खाएगें हिन्दी पंडित पाकिस्तानी पीर लो देखो वह खड़ा हो रहा नया–नया काश्मीर।'' उनकी कविता धार्मिक क्षेत्र में शांति, समता एवं एकता का उद्घोष करती है। वर्तमान समाज के लिए भी वह उपादेय है।

मूलशब्दः नागार्जुन के काव्य, धार्मिक –विश्वासों, अंध–विश्वासों।

प्रस्तावना

नागार्जुन का युग धार्मिक–विश्वासों के खण्डन का युग था। उनके समकालीन कवियों (प्रगतिवाद) ने अंध–विश्वासों, पुरातन मान्यताओं और धार्मिक रूढ़ियों का सर्वत्र विरोध किया। ईश्वर की सत्ता, भाग्यवादिता, स्वर्ग–नरक सभी को नकार कर कर्म को विशेष महत्व दिया, कारण था धर्म का विकृत स्वरूप। नागार्जुन का भी मानना था कि 'धार्मिकता की भावना एक सतही वस्तु बनकर रह गयी है। धर्म के नाम पर समाज में चलने वाले विभिन्न कियाकलाप मात्र एक ढकोसला है। धर्म के प्रचार के नाम पर सीधे–सादे लोगों को ठगा जा रहा है। धर्म के बाह्याचारों ने सामाजिक जीवन को नकली और जड़ बना दिया है। लगता है धर्म की धारण करने की शक्ति के स्थान पर धर्म के क्षेत्र में बाह्याचारों की पकड़ ही मजबूत है।[1]धर्म के क्षेत्र में व्याप्त असमानता, साम्प्रदायिकता एवं धोखाधड़ी देखकर ही नागार्जुन विक्षुब्ध हो उठे तथा उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से धार्मिक भयादोहन की तीव्र भर्त्सना की।

धर्म की जकडबंदी के विरूद्ध संघर्ष

नागा बाबा का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था फिर भी वे भोली–भाली जनता को धर्म की आड़ में ठगने वाले ब्राह्मणों के प्रति रोष करते हुए लिखते हैं– ''दूर होगा ब्राह्मण का दंभ।[2] उन्होंने बौद्ध धर्म में दीक्षा ग्रहण की, बौद्ध संघों के आचार –विचार एवं मान्यताओं का अध्ययन किया। बौद्ध संघो के अनुभव ज्ञान से सम्पन्न होकर 'भिक्षुणी' की कल्पना की। भिक्षुणी' विवशता वश बुद्ध की शरण में गयी थी जैसे ही उसने युवावस्था में प्रवेश किया उसके भीतर नारी सुलभ आकांक्षाएँ हिलोंरे लेने लगी, लेकिन संघ के नियम उसकी आकांक्षा को दबा देते हैं। कवि को यही स्वीकार नहीं है कि कोई भी धर्म मानव की आकांक्षा को दबा दे। उनकी काव्य चेतना का पहला संघर्ष धर्म की जकड़बन्दी के विरोध में चला। उन्होंने अनुभव किया कि धर्म की कोई प्रगतिशील सामाजिक भूमिका नहीं रह गई है। यह धनिकों की सम्पदा एवं साधारण–जनों की विपदा से सम्बद्ध है। धार्मिक क्षेत्र में असमानता एवं अन्याय को देखकर वे बड़ी निर्भीकता से 'लक्ष्मी' पर भी व्यंग्य करते हैंः–

'कमल है आसन
उल्लू है वाहन
इन्द्र –वरूण–वसु–मरूत कुबेर है पुजारी
जय जय हे महारानी!
दूध को करो पानी
आपकी चितवन है प्रभु की खुमारी
महलों में उजाला
कुटियों पर पाला
कर रहा तिमिर प्रकाश की सवारी।[3]

जनवादी बाबा की धर्म पर से आस्था उठने का एक कारण यह भी रहा कि धर्म सामान्य जन को तरह–तरह के विधि निषेधों में उलझाये रखता है, जनसंघर्षों को कुंठित करके भेदभाव अन्याय और उत्पीड़न की रक्षा करता है। कवि की दृष्टि में भगवान कल्पना पुत्र है यदि भगवान सच्ची पुकार सुनने वाला है तो दीन–हीन जनों का आर्तनाद उस तक क्यों नहीं पहुँचता? उन पर अपनी कृपा दृष्टि क्यों नहीं रखता? मानव कर्म से विमुख होकर अर्चन–वंदन हेतु मंदिर में जाता है, शंख एवं घंटा बजाता है परन्तु कल्पना पुत्र उसकी कभी नहीं सुनता फिर ऐसे आडम्बरों से क्या लाभ? कवि जिस धरा का प्राणी है वह धरा दुःख, दैन्यता से परिपूर्ण है और फिर मानव की सेवा में ही जीवन की उन्नति एवं विकास है। कल्पनालोक में विचरण करने पर संसार के कटु सत्यों से साक्षात्कार नहीं हो पाता। जन–जन का हितैषी इस धरा से दूर किसी गुफा निवासी की शरण में कैसे जा सकता है? और ना ही अन्य व्यक्तियों को ही जाने का संदेश दे सकता है। वे 'योगिराज अरविन्द' को विभ्रान्त बुद्धिजीवी, भारी भ्रम भगवान आदि नामों से सम्बोधित करते हैं। अरविन्द के अध्यात्म को नकारते हुए कवि कहता हैः–

नियत नटी के गुह्य कवच से लैस तुम्हारे चेला–चाटी
शान्ति–पाठ करते फिरते हैं
विप्लव के क्षेत्रों में

जय जय हे योगेन्द्र?
खोल रखा है,वाह बुद्धिहत्या का बढ़िया केन्द्र।[4]

धर्म के प्रतीक मंदिर, मस्जिद मठ, तीर्थ स्थान आदि सभी स्थानों पर दुराचार है। धर्म के ठेकेदार–पण्डित, पीर, पुरोहित धर्म के नाम पर अनेक प्रकार की भ्रष्टताओं को जन्म देते हैं। नागर्जुन ने धार्मिक कर्मकाण्डों को कुछ ज्यादा ही देखा था क्योंकि वे बिहार के मिथिला जनपद में जन्में जहाँ गरीबी भी ज्यादा थी और शिक्षा का अभाव भी। अशिक्षित और दरिद्र ही रूढ़िवादिता एवं अंध–विश्वास में अधिक जकड़े रहते हैं। 'धर्म के प्रति उनकी (कवि) विचारणा है कि समाज में प्रचलित धर्म–प्रणाली समृद्ध लोगों द्वारा शोषण के प्रबल माध्यम के रूप में प्रयुक्त की जा रही है। समाज के निर्बल, अक्षम और गरीब लोग धर्म के कठोर अनुशासन में पिस–पिसकर सदा अन्याय और अत्याचार के शिकार होते रहते हैं –शास्त्रकारों को बलि के लिए बकरे ही नजर आये बाघ और भालू का बलिदान किसी को नहीं सूझा.....।[5] यह सत्य है कि जब भी दमन चक्र में पिसता है, दरिद्र ही पिसता है। सदा से ही दीन–हीन का शोषण होता आया है। उच्च वर्ग के तो क्या कहने,उनके तो वेद मंत्र भी स्वर्णिम ही मिलते हैं–

''सोने की स्याही में छपकर वेद मंत्र खिलते है।''[6] धनिक वर्ग तो पैसों के बल पर धर्म क्रय करते हैं। पैसों के बल पर अनेक धार्मिक क्रियाएँ करायी जाती हैं जो जितना पैसा व्यय करता है वह उतना ही बड़ा श्रद्धालु एवं भक्त माना जाता है। 'चौराहे के उस नुक्कड़ पर' कविता पाखंडी साधुओं एवं पैसे की महत्ता पर कराया व्यंग्य है–

सेठों की गलियों का नुक्कड़
काँटों पर लेटा है फक्कड़?
चमक रहे पैसे दो पैसे
और पांच पैसे दस पैसे
.....
श्रद्धा का तिकड़म से नाता
जय हे भिक्षुक! जय हे दाता!
पियो संत हुंगली का पानी
पैसा सच है दुनिया फानी।[7]

धार्मिक अंधविश्वास एवं रूढ़िवादिता के प्रति विद्रोह

इतना ही नहीं बल्कि श्रद्धालु भक्ति से अभिभूत होकर तस्वीरों पर पैसा चढ़ाते हैं, गंगा में पैसा फेंकते हैं। 'देखना ओ गंगा मैया' कविता में कवि कानपुर और बम्बई के उन श्रद्धालुओं पर व्यंग्य करता है जो गंगा की जलधारा में पैसा फेंकते हैं। यह बाह्याडम्बर नहीं तो और क्या है? इन 'धार्मिक अंधविश्वासों और रूढ़ियों ने भारतीय समाज के विकास को अवरूद्ध कर जड़ बना दिया है। नागार्जुन को सामाजिक स्तर पर भेदभाव कतई रूचिकर नहीं है। समाज में ऊँच–नीच और जाति–पाति के दारूण विष का उन्हें कटु अनुभव है।[8] जितने छुआ–छूत के बंधन है सभी मनुष्य द्वारा ही बनाये गये हैं। जाति एवं धर्म के नाम पर आये दिन हो रहे दंगे सामाजिक व्यवस्था को छिन्न–भिन्न कर देते हैं। जितने भी छुआ–छूत के बंधन है सभी मनुष्य द्वारा बनाये गये हैं। आज भी अनेक ऐसे धार्मिक स्थल हैं जहाँ निम्न जाति का प्रवेश निषेध है। इसी अन्याय के विरूद्ध कवि की कलम लिखती है–

''आओ–आओ, अपनी आंखों से देखो यह दृश्य।
नहीं मंदिरों में अब भी घुसने पाते अस्पृश्य।[9]

कवि के हृदय में बापू के प्रति अपार श्रद्धा एवं सम्मान था। उनके अनुसार बापू की हत्या के लिए उत्तरदायी ये धर्म–सम्प्रदाय और उनकी आड़ में होने वाले कुकृत्य हैं। सम्प्रदायवादियों के प्रति नागार्जुन की कलम बरस पड़ती हैः–

'हिन्दू–मुस्लिम–सिक्ख फासिस्टों से न हमारी
मातृभूमि यह जब तक खाली होगी
सम्प्रदायवादी दैत्यों के विकट खोह
जब तक खंडहर न बनेंगे
तब–तक मैं इनके लिखाफ लिखता जाऊँगा.....।[10]

'आजकल यह सच है कि धर्म की आड़ लेकर बड़े से बड़ा धोखा समाज को दिया जा सकता है। इसलिए हर व्यक्ति इस शरण स्थली से अपना सम्बन्ध रखने की फिराक में रहता है। जितने भी अनैतिक और काले कारनामें धर्म ध्वजा की छाया में किये जा सकते हैं, तमाम असामाजिक तत्व उन कार्यों को दिन–रात यहाँ करते दिखाई देते हैं।[11] कवि जब तक जीवित रहा एक नये काश्मीर का स्वप्न देखता रहा, ललकारता रहा 'हिन्दी पण्डित पाकिस्तानी पीर' को, उनकी दृष्टि में काश्मीर समस्या के लिए उत्तरदायी राजनेता के साथ–साथ धार्मिक उन्माद फैलाने वाले पण्डित एवं पीर भी हैं। जो सामान्य जनता को ठगकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। राजनेता भी सामान्य जन को बहला फुसलाकर उनमें पहले तो दंगा करा देते हैं फिर अपनी–अपनी सहानुभूति दिखाकर वोट बटोरते हैं। कोई मरे या जिये इसकी उन्हें कोई परवाह नहीं बस स्वार्थ सिद्ध करना है। काश्मीर तो एक है उस पर अधिकार जमाने वाले दो और लाभ उठाने वाला कोई तीसरा ही है। नागा बाबा एक नये काश्मीर की कल्पना करते हैं जिसको लेकर कोई भी ताकत ना लड़ सके। पंडितों, पीरों दोनों को ही सबक सिखाना चाहते हैं–

मात खाएगें हिन्दी पंडित, पाकिस्तानी पीर.....।
ले देखो वह खड़ा हो रहा नया–नया काश्मीर।।[12]

धर्म की आड़ में भ्रष्टाचार को प्रश्रय मिला है। 'धर्म अपने संकुचित दायरे में सिमट कर रह गया है। वह रामायण की पोथी पर जमी हुई धूल के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं पत्थर और पोथी के सामने नाम रगड़ने को लोग धर्म कहते हैं। कैसी विडम्बना है? कैसा उपहास? कवि धर्म के इस आडम्बरपूर्ण स्वरूप को समग्रतः नकार देता है।[13]

निष्कर्ष

निस्संदेह धर्म का विकृत रूप मनुष्य को कर्म से विमुख करके विश्राम की लोरी सुनाता है। असामाजिक तत्व अनेक अनैतिक कार्य धर्म ध्वजा की छाया में करते हैं तथा बड़े से बड़ा धोखा समाज को देते हैं। जनवादी नागार्जुन की, अन्याय एवं उत्पीड़न को जन्म देने वाले, मनुष्य को पलायनवादी एवं निष्क्रिय बनाने वाले, भ्रष्टाचारियों के पोषक धर्म में न तो आस्था ही रही और न ही विश्वास। उनकी कविता धार्मिक क्षेत्र में शान्ति, समता एवं एकता का ही उद्घोष करती है। वर्तमान समाज के लिए उनकी काव्य, उनके विचार उतने ही प्रासंगिक एवं उपादेय है, जितने उस समय थे।

संदर्भ

1. बाबूराम गुप्त, उपन्यासकार नागार्जुन, पृ0 117।
2. नागार्जुन, रत्नगर्भ, पृ0 14।
3. नागार्जुन, हजार–हजार बाँहो वाली, पृ0 52।
4. नागार्जुन, हजार–हजार बाँहो वाली, पृ0 18।
5. नागार्जुन, रतिनाथ की चाची, पृ0 58।
6. नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ0 35।
7. नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ0 31–32।
8. नागार्जुन, हीरक जयंती, पृ0 50।
9. नागार्जुन, हजार–हजार बाँहों वाली, पृ0 69।

10. नागार्जुन, युगधारा, पृ0 49।
11. सुरेशचन्द्र त्यागी (संपादक), नागार्जुन, पृ0 233।
12. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ0 40।
13. पुष्पा भार्गव, नयी कविता में आक्रोश, पृ0 90।